12

खेलने दो!



काजल अडवाणी

जब लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आज से दस बरस पहले मैं यह जानती थी कि मेरा बेटा पंकज अडवाणी स्नूकर और बिलियड्‌र्स का विश्व चैम्पियन बनेगा, तो मैं कहती हूँ, ''नहीं, जानती तो मैं नहीं थी, लेकिन मुझे विश्वास था कि वह बन सकता है।''

दशक बाद की तो क्या बात करें, कल क्या होगा, यह भी कोई नहीं जानता। लेकिन दस साल का एक बच्चा जब किसी खेल को अपना लेता है, जैसे कि पंकज ने स्नूकर को अपनाया था, तब आपको उसे वह खेल खेलने के लिए समुचित आजादी, अवसर और समय देना ही चाहिए। लेकिन पहले जरा मुझे अपने अतीत में थोड़ा और पीछे जाने दीजिए ताकि मैं आपको बेहतर ढंग से यह बता सकूँ कि स्नूकर हमारे जीवन में दाखिल होता, उसके पहले हमारा जीवन कैसा था!

जब 1990 का खाड़ी युद्ध हमारे जीवन में हलचल मचाता हुआ आया तो मेरे पति अर्जन, बड़ा बेटा श्री, पंकज और मैं, बड़े मजे में अपना जीवन कुवैत में बिता रहे थे। अमेरिका में अपनी छुट्टियाँ मनाने के बाद, कुवैत पर ईराकी हमले के चलते हम लोग कुवैत नहीं लौट पा रहे थे। सो हम अपने वतन लौटे और बंगलौर में टिक गए – यह सोचकर कि जल्द ही एक दिन हम कुवैत वापस जा सकेंगे और वहीं पर अपनी जीवन नैया फिर से आगे बढ़ा पाएँगे।

वह दिन आया, कुवैत ने बुलाया और मेरे पति वापस वहाँ गए भी। लेकिन वे शायद शिकार हो गए 'गल्फ वॉर सिण्ड्रोम' के, जो सम्भवतः तेल के कुओं को जलाए जाने और युद्ध में रासायनिक शस्त्रों के इस्तेमाल के चलते अस्तित्व में आया था। तीन महीने बाद वे बंगलौर आए और आने के कोई एक महीना बाद, 10 मार्च 1992 को चल बसे।

लेकिन जीवन चलने का नाम है। उस समय श्री चौदह बरस का था और पंकज ने तो सात भी पूरे नहीं किए थे। कुवैत में मैं नौकरी करती थी लेकिन अब मैंने पूर्णकालिक गृहिणी–माँ बनने का निश्चय किया, क्योंकि मैं जानती थी कि दो बढ़ते बेटों की इकलौती अभिभावक होना कतई आसान होने वाला नहीं था। यह तो अच्छा हुआ कि मेरी माँ आ गईं हमारे साथ रहने। हमारा जीवन सादा मगर आरामदायक था। मेरे पति के कुवैती पार्टनर ने बिजनेस का सारा पैसा हड़प लिया था, लेकिन भारत में की हुई बचत के चलते हमारा गुजर–बसर हो ही जाता था।

पंकज जब दस बरस का था, वह श्री के साथ हमारे घर से थोड़ी दूर ही एक स्नूकर पार्लर जाने लगा। शुरू–शुरू में तो वह बस श्री को अपने दोस्तों के साथ खेलते देखता। फिर कुछ हफ्तों के बाद पंकज ने अपना हाथ आजमा देखने की चिरौरी की। पहली ही बार में उसने लाल गेंद को 'गुल्लक' में डाल दिया। बस वहीं से शुरू हुई छड़–खेलों के साथ हमारे पंकज की लव स्टोरी।

शुरू में मुझे लगता, ''खेल ही तो है, और अगर खेलना उसे खुशी देता है तो क्या बुरा है? सो उसे खुश रहने दिया जाए।'' लेकिन उसकी दीवानगी का अहसास तो मुझे उस वक्त हुआ जब उसने घर पर अपने कैरम बोर्ड पर स्नूकर खेलना शुरू किया। गेंद की जगह वह कंचे इस्तेमाल करता और छड़ी की जगह चॉपस्टिक। मेरे हिसाब से पंकज के जीवन में मोड़ तब आया जब उसने अपनी सालाना छुट्टियों के दौरान पहले से तयशुदा कार्यक्रम के मुताबिक मुम्बई न जाकर कर्नाटक राज्य बिलियर्डस् एसोसिएशन (के.एस.बी.ए.) द्वारा आयोजित स्नूकर और बिलियर्डस् कोचिंग कैम्प में भाग लेना तय किया। उसने दो लगातार कैम्पों के लिए अपना नाम लिखवाया, जिसमें उसकी छह सप्ताह लम्बी छुट्टियाँ तमाम हुईं। सुबह से लेकर रात तक वह वहीं के.एस.बी.ए. में रहता। रात में मैं ऑटो में बैठ उसे लिवाने जाती। बिलियर्डस् और स्नूकर के अलावा उसे कुछ सूझता ही नहीं था। मैं तहेदिल से के.एस.बी.ए. प्रबन्धन की आभारी हूँ जिसने 11 साल के एक बच्चे को अपनी टेलेण्ट कैटेगरी मेम्बरशिप प्रदान की। इसी का नतीजा था कि 250/– रु. के अल्प मासिक भुगतान के बदले वह हर दिन जितना चाहे उतना खेल सकता था, वह भी बिलियर्डस् टेबलों पर। हमारे लिए यह एक बड़ा वरदान था क्योंकि उसके बार–बार स्नूकर पार्लर जाने से मेरा

बजट तो डगमगाने लगा था।

मैंने पंकज को कभी खेलने से मना नहीं किया, लेकिन एक वादा मैंने उससे जरूर ले लिया था कि वह अपनी पढ़ाई की अनदेखी कभी नहीं करेगा। और इसका तमाम श्रेय मैं द फ्रैंक एन्टनी पब्लिक स्कूल के प्राचार्य मि. ब्राउन को देती हूँ जिन्होंने पंकज का साथ पूरी तरह से दिया और मुझे आश्वस्त भी किया कि खिलाड़ी अपने अनुशासन और अपनी एकाग्रता के चलते बेहतर विद्यार्थी होते हैं। चूँकि एक खिलाड़ी को पता होता है कि इतना समय उसे अपने खेल को देना पड़ेगा। वह अपनी कक्षा में बड़ा ध्यानमग्न होकर बैठता है ताकि उस वक्त पढ़ाई जा रही हर बात को वह पूरी तरह से जज्ब कर ले, बाद में तो वैसे भी उसे पढ़ाई के लिए समय नहीं मिलने वाला। (आगे चलकर, स्कूल के अपने अन्तिम वर्ष में पंकज अपने बड़े भाई श्री के नक्श–ए–कदम पर चलते हुए अपने स्कूल का प्रधान छात्र – हेड बॉय – बना)।



तो अगर आपका बच्चा एक अच्छा विद्यार्थी है, और एक अच्छा खिलाड़ी बनने की ओर अग्रसर है तो आप क्यों न उसे अपना शौक पूरा करने दें? पंकज जब 11 साल 7 महीने का था, तब फाइनल में अपने बड़े भाई को हराकर उसने प्रदेश स्तर का अपना पहला बड़ा खिताब जीता था। प्रेस के साथ अपने पहले ही साक्षात्कार में जब उससे यह पूछा गया कि वह क्या बनना

चाहता है, तो उसने जवाब दिया, ''एक दिन मैं विश्व चैम्पियन बनना चाहूँगा।'' मासूमियत भरा जवाब था यह। जिसने भी वह इण्टरव्यू पढ़ा, उसके भोलेपन पर हँस पड़ा। मैं भी हँसी। पंकज तो खैर अपना यह इण्टरव्यू भूलभाल कर बदस्तूर अपनी जिन्दगी जीता रहा – स्कूल जाना, होमवर्क निपटाना, झटपट के.एस. बी.ए. पहुँचना, थकान से चूर पर खुशी और सन्तोष से भरपूर घर लौटना।

इसके बाद, पंकज के जीवन में श्री अरविन्द सवूर आए। वे दुनिया के सर्वश्रेष्ठ स्नूकर कोच हैं और पंकज में

पिछले सात सालों में, पंकज ने 7 विश्व खिताब, एशियाई खेलों के दो स्वर्ण पदक, चार एशियाई बिलियर्ड्स टाइटल और ऑस्ट्रेलियाई ओपन खिताब जीता है। उसे अर्जुन पुरस्कार, राजीव गाँधी खेल रत्न और पद्म श्री से नवाजा गया है। अपनी नादान से नादान कल्पना में भी मैंने कभी ऐसा न सोचा होगा।

योग्यता देख उन्होंने उसे अपने घर की स्नूकर टेबल पर निशुल्क प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया। देखते ही देखते पंकज, सवूर परिवार का एक हिस्सा बन गया और अरविन्द उसके पिता–समान।

पंकज के जीवन में भाग्य की बड़ी भूमिका रही। पहले तो उसके स्कूल और फिर उसके कॉलेज (महावीर जैन कॉलेज) ने उसे भरपूर समर्थन और छात्रवृत्तियाँ दीं। जैन ग्रुप के अध्यक्ष श्री चैनराज जैन जब भी पंकज को कॉलेज में देखते तो कहते, ''तुम यहाँ क्या कर रहे हो? जाओ भई, जाकर प्रैक्टिस करो अपनी!'' परीक्षा के कोई एक महीना पहले खिलाड़ियों के लिए विशेष कक्षाएँ लगाई जातीं – बस केवल उन्हीं दिनों ही पंकज अपने कॉलेज गया होगा।

पंकज ने अपना पहला विश्व पुरुष स्नूकर खिताब अठारह साल की उम्र में चीन में जीता। उसके जीतने की उम्मीद उसे और उसके कोच के अलावा किसी को भी नहीं थी। तब मुझे याद आया कि पंकज जब सिर्फ 14 बरस का था तो श्री सवूर ने मेरे धन्यवाद के जवाब में कहा था, ''वह दिन बस जल्द ही आएगा जब मैं आपका शुक्रिया अदा करूँगा कि आपने मुझे उसका कोच बनने की इजाजत दी, क्योंकि एक दिन वह विश्व चैम्पियन बनने वाला है।''

पिछले सात सालों में, पंकज ने 7 विश्व खिताब, एशियाई खेलों के दो स्वर्ण पदक, चार एशियाई बिलियर्डस् टाइटल और ऑस्ट्रेलियाई ओपन खिताब जीता है। उसे अर्जुन पुरस्कार, राजीव गाँधी खेल रत्न और पद्म श्री से नवाजा गया है। अपनी नादान से नादान कल्पना में

भी मैंने कभी ऐसा न सोचा होगा।

लेकिन यहाँ अभिभावकों को इतना तो चेताना होगा कि कोई चाहे कितना भी सफल खिलाड़ी क्यों न हो, उसके जीवन में हमेशा ही सब कुछ ठीक–ठाक नहीं होता। पहले पहल तो उसके खेल में कुछ ऐसे भी 'खिलाड़ी' होते हैं जो सफलता की सीढ़ी पर उसका ऊपर चढ़ना नहीं देख सकते और सारा समय उसे नीचे गिराने में ही लगे रहते हैं। इसके अलावा, हर खेल की तुलना, अन्य खेलों – भारत के मामले में क्रिकेट – के साथ होने लगती है। भारत में, क्रिकेट से अलग दूसरे किसी भी खेल का एक खिलाड़ी जब यह देखता है कि वह दस साल के अपने पूरे खेल जीवन में भी इतना नहीं कमा सकता जितना कि एक क्रिकेटर 45 दिन के आई.पी. एल. में कमा लेता है, तो वह निराश हो जाता है। हमें हर हाल अपने बच्चों का हौसला बनाए रखना होगा, फिर चाहे हमारे अपने अन्दर क्या कुछ न उमड़–घुमड़ रहा हो। सिर्फ पैसा ही नहीं, मीडिया, कॉर्पोरेट जगत, और अन्य लोग भी क्रिकेट और क्रिकेटेतर खेलों के बीच बहुत भेदभाव करते हैं।

जोश बुझने लगता है, लेकिन हमें इसकी लौ जलाए रखनी होगी। मुझे लगता है मेरा बेटा पैदा ही स्नूकर और बिलियर्डस् खेलने के लिए हुआ था। अगर उसे यह सब बीच में ही छोड़ना पड़ता तो बड़ा रंज होता। और मैं उसे यही कहती हूँ।

परीक्षा में जब उसके 90 प्रतिशत अंक नहीं बने तो मैंने जरा भी परवाह नहीं की। अपनी बारहवीं की परीक्षा में उसने 80 प्रतिशत और बी.कॉम में 75 प्रतिशत अंक पाए। मेरे लिए उसके इतने ही अंक काफी थे। उसे अगर इससे भी कम अंक मिलते, तो भी मैं खुश रहती। मुझे यह बात भी सताती कि वह करोड़ों में नहीं कमाता। जिन्दगी में पैसा ही सब कुछ नहीं है। हमें अपनी प्राथमिकताएँ तो तय करनी ही होंगी। खिलाड़ी के लिए खेल ही सबसे ऊपर होना चाहिए।

उन्नीस साल का था और अभी कॉलेज में पढ़ ही रहा था, जब पंकज को ओ.एन.जी.सी. ने अपने यहाँ एच. आर. एक्जेक्टिव की नौकरी दी। अपने विश्व खिताबों के चलते पाँच साल में उसे तीन पदोन्नतियाँ मिलीं। नौकरी में उसे किसी को रिपोर्ट नहीं करना होता, सो अपने खेल के लिए उसके पास पर्याप्त समय होता है।

मेरा बड़ा बेटा श्री वैसे तो एक राष्ट्रीय स्तर का बिलियर्डस् खिलाड़ी था, लेकिन अपनी स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई उसने ऑस्ट्रेलिया से करने की ठानी। वहाँ जाकर उसे अच्छा तो लगा, मगर उसे लगा कि उसके भाई को उसकी जरूरत है, सो छह साल वहाँ रहने के बाद वह बंगलौर लौट आया। श्री अब खेल मनोविज्ञान

एक बच्चे को उसके माँ–बाप से बेहतर कोई नहीं जान सकता। माँ या पिता किसी चीज में अपने बच्चे की सामान्य रुचि और दीवानगी में भेद कर सकते हैं। यदि एक बच्चे को किसी खेल, या पेन्टिग या गायन जैसी किसी कला का शौक है तो आप उसे अपना वह शौक पूरा करने दें। माँ–बाप हमेशा यही क्यों सोचते हैं कि अगर उनके बच्चे अपना शौक पूरा करते हैं तो उनकी 'पढ़ाई पर असर पड़ेगा'?

में विशेषज्ञता के साथ मनोविज्ञान में पीएच.डी. कर रहा है। खेल शायद उन दोनों की रग–रग में हैं। वह तो पहले से ही कई खिलाड़ियों को मानसिक–प्रशिक्षण देता रहा है, और उसका छोटा भाई पंकज उसका सबसे प्रिय विद्यार्थी है।

पंकज की सफलता का बहुत सारा श्रेय श्री के प्रशिक्षण को और इस बात को जाता है कि श्री उसके लिए हर वक्त उपलब्ध है।

क्या माता–पिता अपने बच्चों को अपने शौक पूरा करने की छूट दें या अधिक व्यावहारिक बनकर अपने बच्चों के लिए वह रास्ता चुनें जिस पर चलकर वे अधिक पैसा कमा सकते हैं? मूलतः हम भारतीय बहुत असुरक्षित कौम हैं, इसलिए कोई भी निर्णय लेते समय हम उसमें 100 प्रतिशत सुरक्षा ढूँढ़ते हैं। हम सामाजिक सुरक्षा चाहते हैं, सामाजिक मानकों की चिन्ता करते हैं (लोग क्या कहेंगे या सोचेंगे, यह हमारे लिए जीवन–मरण का सवाल–सा बन जाता है)। हमें धन की सुरक्षा भी चाहिए – सो हमारा लक्ष्य हमेशा पहले से आजमाई हुई नौकरियाँ करना रहता है (फिर चाहे हमारा मन उनमें लगे या न लगे)। हम मानसिक तौर पर भी सुरक्षित रहना चाहते हैं – एक बार अपना मन बना लिया तो किसी को भी

हमसे तर्क करने की इजाजत नहीं होनी चाहिए।

एक बच्चे को उसके माँ–बाप से बेहतर कोई नहीं जान सकता। माँ या पिता किसी चीज में अपने बच्चे की सामान्य रुचि और दीवानगी में भेद कर सकते हैं। यदि एक बच्चे को किसी खेल, या पेन्टिग या गायन जैसी किसी कला का शौक है तो आप उसे अपना वह शौक पूरा करने दें। माँ–बाप हमेशा यही क्यों सोचते हैं कि अगर उनके बच्चे अपना शौक पूरा करते हैं तो उनकी 'पढ़ाई पर असर पड़ेगा'? अकादमिक–शैक्षिक सन्दर्भ पृष्ठभूमि का काम कर सकता है; मुख्य अदाकार तो बच्चा ही होगा, इसलिए कहानी भी बच्चे और उसकी दीवानगी की ही होनी चाहिए।

हर इन्सान के लिए एक दिन में 24 घण्टे होते हैं। हमारे प्रधानमन्त्री के पास भी वही 24 घण्टे हैं जो हमारे पास हैं। अब यदि वह इन चौबीस घण्टों में भारत जैसा विशाल और विविधतापूर्ण देश चला सकते हैं तो हमारे बच्चे क्या अपने दो काम – पढ़ाई और खेल – भी नहीं कर सकते? देखा जाए तो खेलों से हमें बहुत कुछ मिलता है – हमारा चरित्र–निर्माण होता है, हम अनुशासित होते हैं, हमारी एकाग्रता और हमारी आध्यात्मिकता बढ़ती है। हमें खेलों को केवल उनके भौतिक रूप में नहीं देखना चाहिए गोया वे केवल बल्ले/रैकेट/छड़ी और गेंद से खेले जाते हों। खेलों को हमें उनके समग्र रूप में देखना चाहिए। मेरे बेटों से मैंने यही सब सीखा है और उन्हें पाकर मैं धन्य महसूस करती हूँ।

चलिए हम अपने बच्चों को उनके अपने (न कि हमारे) सपने पूरे करने दें। हम उन्हें अपने जीवन रूपी नाटक का केन्द्रीय पात्र बनने दें। बात यह नहीं है कि हमें अपने माता–पिता से ऐसा कोई अवसर मिला या नहीं। यदि मिला तो यही मौका है उसे आगे तक पहुँचाने का। और यदि नहीं मिला तब तो और भी वजनी वजह बनती है बच्चों को अपना शौक पूरा करने देने की। उड़ने को जब वे तत्पर हों, उनकी उस उड़ान में हम अपने बच्चों की मदद करें!

उन्हें खेलने दें, उन्हें उड़ने दें!

काजल अडवाणी *बिलियर्डस चैम्पियन पंकज अडवाणी की माँ हैं।*

